व्योमकेश दरवेश : संघर्ष, हर्ष और संघर्ष की कहानी

(फिर बैतलवा उसी डार पर)

अवधेश कुमार*

'व्योमकेश दरवेश' नाम ही अपनी विशिष्टता को समेटे हुए है। जिसके नाम मात्र से ही हृदय में कौतुहल उमड़ने लगता है। 'व्योमकेश दरवेश' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन का प्रामाणिक व संस्मरणात्मक वृतान्त है। इसमें आचार्य जी के जन्म से लेकर महाप्रस्थान तक की जीवन–यात्रा को उनके ही आत्मीय शिष्य पंडित विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने एक अविस्मरणीय ग्रंथ का रूप प्रदान किया है, जिसका संघर्षमयी एवं आदर्शवादी योगदान हिन्दी साहित्य जगत में सराहनीय है। इस कृति में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के जन्म, शिक्षा, शिक्षकीय जीवन का निर्वाह तथा उनके व्यक्तित्व का विवरण स्मृतियों के आधार पर रेखांकित किया गया है। रचनाकार विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'व्योमकेश दरवेश' के माध्यम से संस्कृत और हिन्दी के प्रकांड विद्वान, ज्योतिषाचार्य, साहित्यकार, इतिहासकार, उपन्यासकार, निबन्धकार, कहानीकार एवं मर्म आलोचक आचार्य पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन की समस्त गतविधियों व्यक्तिगत, व्यावहारिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, कूटनीतिक, शिष्यवत्, मित्रवत्, गुरुवत्, कृतित्व, गुण–दोष तथा स्वयं के वैचारिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डालकर उसे प्रामाणिक व रचनात्मक ढंग से उद्धृत किया है।

इस कृति में कथेत्तर साहित्य की लगभग सभी विधाओं संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, डायरी आदि के गुण परिलक्षित होते हैं। रचना के सम्बन्ध में रचनाकार खुद संशंकित है कि इसे किस कथेत्तर विधा का नाम दूँ! वास्तव में यह रचना अन्य कथेत्तर साहित्यों से अपना एक अलग मुकाम रखती है। इसमें किसी एक गुण का समावेश नहीं, बल्कि बहुगुणी रुपों में व्याप्त है। इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथेत्तर साहित्य का एक मानदण्ड स्वतः ही दूसरे मानदण्ड को अवसर देता है तथा खुद अपने ही मानदण्ड को आंशिक रुप से खारिज कर देता है। यद्यपि यह विभिन्न मानदण्डों पर खरी भी उतरती है; चाहे वह संस्मरण हो या जीवनी,

शोध–छात्र, हिन्दी विभाग डॉ0 हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश)

आत्मकथा हो या डायरी आदि विधाओं के मापदण्ड परिलक्षित होते हैं। रचनाकार, रचना की मौलिकता को बखूबी ढंग से बरकरार किये हुए हैं। रचना बिना किसी बाहरी पर्दे के अपने मौलिक और सजीव घूँघट को ओढ़ी हुई है। वास्तव में यही मौलिक सादगी और सारगर्भित सौम्यता ही इस कृति की विशिष्टता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मूलतः ज्योतिष तथा संस्कृत के विद्यार्थी रहे। साहित्य से उनका बेहद लगाव होने के कारण हिन्दी साहित्य में भी उनकी गहरी रुचि थी। फलतः हिन्दी साहित्य के सागर में डूबकी लगायी और महारत हासिल की। इस संदर्भ में इनकी साहित्यिक कृतियाँ ही स्वयं प्रमाण है। आचार्य जी का व्यक्तित्व साधारण, संयमी और स्वाभीमानी था। संघर्षों और विरोधों के बावजूद भी जीवन में धैर्य के साथ सहनशील होकर अपनी विलक्षण प्रतिभा तथा कृतित्व सेवा के द्वारा हिन्दी साहित्य में सूर्य की तरह देदीप्यमान हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म 19 अगस्त 1907 ई0 को बलिया से करीब 15 किलोमीटर दूर, पूर्व की ओर बसरिकापुर कस्बे की सड़क के दूसरी तरफ ओझवलिया गाँव के पुरवा आरत दूबे का छपरा है, जहाँ अभी तक द्विवेदी परिवार का पुश्तैनी मकान है। आरत दूबे का छपरा गंगातट के किनारे पर स्थित है, जहाँ पवित्र पावनी 'गंगा' की अविरल धारा द्विवेदी परिवार के इस पुश्तैनी मकान को स्पर्श करती है। आचार्य जी के पूरे जीवन काल में इनके नाम की अद्भुत गंगा बही, जो भिन्न–भिन्न समयों में नये–नये रुप धारण करते गये। देखा जाय तो इनके बचपन का नाम बैजनाथ (बैद्यनाथ) द्विवेदी था। इनके चचेरे भाई पंडित विश्वनाथ द्विवेदी के अनुसार भोलानाथ द्विवेदी था। इनके नाम में एक रहस्य छिपा हुआ है, जिसके सम्बन्ध में यह प्रसंग है कि इनके नाना की गाजीपुर कचहरी में एक मुकदमें में हजार रुपये की डिग्री होने के कारण, मुकदमें के विजय का श्रेय इन पर गया, जिससे इनका नाम 'हजारी' पड़ गया। इसी प्रकार 'व्योमकेश शास्त्री' नाम के रहस्य के बारे में ज्ञातव्य है कि शान्तिनिकेतन में 'व्योमकेश शास्त्री' प्रच्छन्न नाम से अपने गुरू ज्योतिषाचार्य पंडित रामयत्न ओझा के मत का खंडन किये थे, जिसके कारण 'व्योमकेश शास्त्री' पड़ा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन के बारे में कहा गया है कि–

> ''बलिया की मोटी मिट्टी ने यह अशोक का फूल उगाया।
> अचरज क्या जब घोर दार्शनिक रस की चरम मूर्ति बन आया।।
> अपनी कथा अमर कर डाली बाणभट्ट की आत्मकथा की गाथा गाकर।
> ज्योतिष से क्या जान लिया था निज भविष्य फल गणित लगाकर।।
> शब्द तुम्हारे बने भाव–सर, भाव तुम्हारे यश के केतन।
> मन में चिन्तन शान्ति लिए तुम स्वयं बने हो शान्तिनिकेतन।।''1

इनके पिता का नाम पंडित अनमोल द्विवेदी तथा माता का नाम श्रीमती ज्योतिष्मती था, जो बंगाल के फरीदपुर जिले में बरहमगंज स्थित श्री राजबिहारी बाबू के जूट गोदाम में क्रय–विक्रय कार्य के लिए अधिकारी नियुक्त थे। इनका विवाह उपाध्याय परिवार की कन्या भगवती देवी के साथ 17 अगस्त 1927 ई0 में हुआ था। भाईयों में पंडित रमानाथ द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी एवं रवीन्द्रनाथ द्विवेदी थे। यहाँ उत्सुकतावश यह बताना चाहता हूँ कि आधुनिक समय की चर्चित साहित्यकार डॉ. अल्पना मिश्र पंडित रवीन्द्रनाथ द्विवेदी की पुत्री एवं आचार्य जी की भतीजी हैं, जो पारिवार की साहित्यिक पीठ को प्रज्ज्वलित किये हुई हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पुत्रों में श्री जगदीश द्विवेदी (बबुआ), श्री मुकुन्द द्विवेदी (लालजी), श्री सिदार्थ द्विवेदी (गिप्पी), श्री आनन्द (पुट्टू) तथा पुत्रीयाँ श्रीमती इन्दुमती ओझा (पुतुल), मालती (तितिल), मुन्नू (भारती मिश्र) हैं।

आचार्य जी के व्यक्तित्व में गाँव–जवार, मिथक, किंवदन्तियाँ, लोकवार्ताएँ तथा आचार–विचार समाहित था, जिसके कारण इनकी रचनाओं में सृजनात्मकता का नया आयाम दिखायी पड़ता है। इनके बारे में लोगों का कहना था कि देवदारू वाले पंडित जी का व्यक्तित्व तो ऐसा है कि यदि बालू भी उन्हें अच्छी लग जाये तो वे उससे भी तेल निकालने का हौसला रखते थे। अतीत, वर्तमान, भविष्य सब में उनकी कल्पना का रथ अबाध चलता था और सामान्य बातचीत में भी वह अपने काम की चीज निकाल लेते थे।

आचार्य जी की प्रारम्भिक शिक्षा प्राथमिक विद्यालय रेपुरा से एवं मिडिल की परीक्षा बसरिकापुर से उत्तीर्ण की। कुछ समय तक ये अपने पिता के साथ बंगाल के एक निजी हाई स्कूल में बंगला माध्यम से भी पढ़े और वहीं पर इनको बंगला भाषा का अच्छा ज्ञान भी हुआ। यह वह समय था जब भारत अंग्रेजो की गुलामी की जंजीर में जकड़ा हुआ था। त्रस्त और परेशान भारतीय नागरिक मातृभूमि की आजादी के लिए बेचैन थे। सन् 1921 ई. में महात्माँ ने 'स्कूल छोड़ो आन्दोलन' छेड़ दिया, जिससे सारे अंग्रेजी स्कूल छात्रविहीन होकर बन्द होने लगें और इनको लाचार होकर बलिया आना पड़ा। बंगाल से लौटने के पश्चात कुछ दिनों तक शिक्षा के लिए भटकते रहें तथा कुछ दिन बाद ही गाँव के समीप सिंहाकुण्ड गाँव में पराशर ब्रह्मचर्याश्रम में अध्ययन करने लगे। कालान्तर संस्कृत की पढ़ाई के लिए काशी आना पड़ा और रणवीर संस्कृत पाठशाला कमच्छा में संस्कृत पढ़ने लगे। ज्योतिष की पढ़ाई करने के लिए इन्होंने अपना दाखिला काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में करवाया। जिसके संस्थापक पंडित मदन मोहन मालवीय थे। इनके नाम के बारे में प्रचलित है कि 'मद न, मोह न–वह मदनमोहन' अर्थात जिसमें मद न हो, मोह न हो वो है मदन मोहन मालवीय। मालवीय जी ने काशी

हिन्दू विश्वविद्यालय के विकास के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। देश–विदेश के ख्यातिलब्ध विद्वानों के सहयोग से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सर्वविद्या की राजधानी बनी हुई है, जिसके ज्ञान की ज्योति से सारा विश्व प्रकाशमान है। मालवीय जी विद्यार्थियों को प्रायः यह प्रसिद्ध उक्ति सुनाते थे–

''सुखं वा यदि वादुखं, प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः''2

सुख हो या दुःख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाए उसे प्रसाद रूप में ग्रहण कर लेना चाहिए लेकिन सदा हृदय या मन से अपराजित रहकर। आचार्य जी ने इस मूल मंत्र को अपने जीवन में सहज ही समाहित किया। विद्या की इस राजधानी में प्रकांड ज्योतिषाचार्य पंडित श्री रामयत्न ओझा से ज्योतिष की शिक्षा प्राप्त किये। उस समय चारों तरफ ओझा जी के यश की कीर्ति दूर–दूर तक फैली हुई थी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ज्योतिष की पढ़ाई के उपरान्त आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का अध्यापकीय जीवन शान्तिनिकेतन (बंगाल) से प्रारम्भ होता है। उन दिनों यह ज्ञान का समृद्ध संस्थान था, जिसके संस्थापक रवीन्द्रनाथ टैगोर जी थे। शान्तिनिकेतन में संस्कृत और हिन्दी के अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए और यहीं पर इनके साहित्यिक व्यक्तित्व का विकास हुआ। रवि ठाकुर, दीनबन्धु एंड्रयूज़, क्षितिमोहन सेन, नन्दलाल बोस, उपेन दा, रामकिंकर जैसे लोगों का इन्हें आत्मीय स्नेह मिला। ज्ञान के इस निकेतन में उन्होंने अशोक के फूल, आम फिर बौरा गये, नाखून क्यों बढ़ते हैं, बाणभट्ट की आत्मकथा, कबीर, नाथ सम्प्रदाय जैसी कृतियों की रचना की। आचार्य द्विवेदी को शान्तिनिकेतन के सुरम्य एवं सृजनात्मक वातावरण ने साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र में अपार यश और कीर्ति दिलायी और इनका जीवन हर्षोल्लास से भर उठा। इन्होंने जीवन में कर्म की सच्ची अनुभूति से मानव जीवन–दर्शन को रेखांकित किया।

शान्तिनिकेतन में आचार्य जी को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष पद हेतु बुलावा पत्र भेजा जाता है। शान्तिनिकेतन से लम्बे समय के बाद आचार्य जी बनारस आते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष के पद पर नियुक्त होकर 10 वर्षो तक साहित्य सेवा की। उन दिनों काशी, हिन्दी साहित्य का अद्भुत केन्द्र बना हुआ था। काशी में ही रहकर इन्होंने हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास की रचना की। नागरी प्रचारिणी संस्थान में हिन्दी साहित्य के विकास में इनका अद्वितीय योगदान रहा। आचार्य जी ने अपनी मातृ–संस्था में शान्तिनिकेनती विचारधारा लेकर काशी आ तो गये लेकिन काशी उनके लिए कर्मस्थली की अपेक्षा रणस्थली ज्यादा बनी रही। इस शहर के बारे में किंवदन्तियाँ रही हैं कि काशी के लोग किसी

को सम्मानित करना कम जानते हैं लेकिन सम्मानित होने में उनकी रुचि अधिक होती है। इस बात की पुष्टि लोकवादी कवि तुलसीदास ने काशी प्रवास के दौरान लिखा था कि 'बहुत प्रीति पुजाइबे की पूजिबे की थोर'।

''काशी में विद्वता और कुटिल दबंगई का अद्‌भुत संगम है। कुटिलता, कूटनीति, ओझापन, स्वार्थ–आदि का समावेश यहाँ के विद्वानों की विद्वता में आ जाता है। काशी में प्रतिभा के साथ परदु:खकातरता, स्वाभिमान और अनंत तेजस्विता का भी मेल है जो कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, प्रेमचन्द और प्रसाद आदि में दिखलाई पड़ता है। काशी में प्रायः उत्तर–भारत मुख्य रूप से हिन्दी क्षेत्र के सभी तीर्थ स्थलों पर परान्नभोजी, पाखंडी पंडो की भी संस्कृति है जो विदग्ध, चालू, बुद्धिमान और अवसरवादी कुटिलता की मूर्ति होते हैं।''3 काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आचार्य जी को विरोधों व संघर्षों का घोर सामाना करना पड़ा। इनके विरोधी इनके ऊपर छीटें कसते थे और कहते थे कि इनको कुछ नहीं आता। वे राजनीतिज्ञ हैं, ज्योतिषी हैं, कथावाचक हैं पर हिन्दी के मर्मज्ञ नहीं हैं। इनके बारे में तरह–तरह का दुष्प्रचार किया जाने लगा और इन पर आरोप लगाकर लागों ने इन्हें नौकरी छोड़ने पर विवश कर दिया।

''किसी ने फिर न सुना दर्द के फसाने को
मेरे न होने से राहत मिली जमाने को।''4

काशी के अधिकतर लोग द्विवेदी जी को ब्राह्मण विरोधी मानते थे। सच तो यह था कि न तो वे ब्राह्मण विरोधी थे और ना ही ब्राह्मणवादी, बल्कि वे एक अच्छे सहज, सरस और सौम्य इंसान थे। यह माना जाता है कि बंगाल से बनारस आने के बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इनके जीवन–संघर्ष का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है। हालांकि पहला संघर्ष तो इनका विद्यार्थी जीवन काल था, जो किसी तरह काशी में व्यतीत कर रहे थे और ज्ञान रूपी कर्म अर्थात् कथावाचन के माध्यम से अपना तथा अपने परिवार की आर्थिक सहायता करते रहे। जीवन का दूसरा संघर्ष भी पुनः काशी से ही प्रारम्भ होता है। शान्तिनिकेतन ने तो उन्हें यश और हर्ष का प्रसाद दिया, लेकिन काशी ने छल किया, जिससे विवश होकर पुनः संघर्ष की सीढ़ी पर चढ़ना पड़ा। वे काशी के विद्वानों के बारे में कहते थे कि इनमें पांडित्य के साथ चांडित्य भी होता है–चांडित्य स्वभाव बन गया था। वे आपस में भी परस्पर इसे बरतते थे। अध्यापकों के कार्य पर रोष आकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में द्विवेदी जी ने कहा 'डॉ. साहब हम अध्यापक लोग कुटिल राजनीति करेंगे और वे जिनका दिन–रात का काम कुटिल राजनीति से ही करना है। सत्य न्याय के मार्ग पर चल रहे हैं।'

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद से हटाये जाने

के बाद द्विवेदी जी चंडीगढ़ विश्वविद्यालय, पंजाब में हिन्दी विभागाध्यक्ष पद पर नियुक्त होते हैं। जीवन के इस संघर्ष में इनके प्रिय साथी इन्द्रनाथ मदान, नगेन्द्र तथा अज्ञेय ने काफी सहयोग किया। काशी ने उन्हें खदेड़ा और पंजाब ने उनकी गरिमा को समझा और अपने यहाँ स्थान देकर प्रेमपूर्वक स्वीकार किया। द्विवेदी जी ने पंजाब के बारे में कहा कि ''पंजाबियत कितनी अकुंठ जीवनदायिनी और निश्छल है। अपने क्षेत्र पुरबियापन (काशी) में एक खास तरह का घुन्नापन होता है, वह पंजाब में कम है। लोग परिश्रमी हैं, सीधे बात करते हैं और जीवन का आनन्द लेते हैं। पंजाब का व्यवहार, पुरबियों से भिन्न–भिन्न नहीं, बिल्कुल विपरीत था।''5 द्विवेदी जी बड़े संघर्षशील और जुझारू थे। लेखनी ही उनकी रणस्थली थी। पंजाब विश्वविश्वविद्यालय में उन्होंने कुटज, देवदारु जैसी अद्‌भूत कृतियों की रचना की। पाश्चात्य साहित्य को पढ़ने के लिए रमेश कुंतल मेघ ने उनको उत्साहित किया, जिसके परिणाम–स्वरूप वे सूसान के लैंगर, अर्नस्ट कैसाइरर, ग्रोम्बिच मार्गेट मीड़, हर्बर्ट रीड, एरिक न्यूटन, सास्यूर, कैसिरर, टामस मुनरो आदि को भी पढ़ा। उनके समकालीन विचार का आधुनिकीकरण होता गया, जिसका प्रमाण पुनर्नवा में स्पष्ट दिखायी देता है।

फिर बैतलवा उसी डार पर अर्थात आचार्य जी को एक बार फिर काशी के अपनेपन के मोह ने खींच लिया और वे पंजाब से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आ गये। लेकिन, इस बार उन्हें विभागाध्यक्ष न बनाकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रशासनिक पद (रेक्टर) के कार्यभार का दायित्व मिला था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हटाये जाने के बाद जोशी ने उन्हें सत्ता के विरोध के बावजूद अपने यहाँ सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठित किया। कुलपति के न रहने पर द्विवेदी जी कार्यकारी कुलपति का कार्य वहन करते थे। विश्वविद्यालय वातावरण से क्षुब्ध होकर द्विवेदी ने वातावरण को शुद्ध करने का संकल्प लिया। विश्वविद्यालय को ठीक करने के लिए अनशन पर बैठ गये थे। विश्वविद्यालय की विभिन्न विसंगतियों एवं विरोधों के बाद उन्हें इस पद से भी हटना पड़ा लेकिन साहित्य सेवा से प्रेम उनका नहीं छूटा। लखनऊ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष पद पर नियुक्त होकर आजीवन हिन्दी साहित्य की सेवा में संघर्षरत रहे।

आचार्य जी का स्वास्थ्य शान्तिनिकेतन के समय से ही अक्सर खराब रहता था। गौर से देखने पर पता चलता था कि लैट फूटेड थे, जिससे दर्द के कारण वे दाहिना पैर थोड़ा घसीट कर चलते थे। उन्हें साइटिका भी था जिसे वे विनोद में साहित्यिका यानी साहित्यकारों का रोग कहते थे। 'हनुमान बाहुक' में तुलसीदास जी को जिस बाहु–पीड़ा की व्यथा थी उसके आधार पर वह साइटिका ही थी। धीरे–धीरे आचार्य जी अस्वथ्य होते चले गये और 19 मई सन् 1979 ई को हिन्दी जगत के प्रकांड विद्वान तथा भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता के परम पोषक, अप्रतिम उपन्यासकार व निबन्धकार, संत साहित्य के परम भक्त, उत्कृष्ट

कथालोचक, सरल व्यक्तित्व व बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का दिल्ली में देहावसान हो गया। जीवन के अंतिम समय में उनके मुख से यह उक्ति अक्सर सुनी जाती थी–

''पढ़ा पढ़ाया लिखा लिखाया, अब क्या करना बाकी।
व्योमकेश दरवेश चलो गंगा के तट एकाकी।।''6

इस प्रकार देखा जाय तो आचार्य हजारी प्रसाद का संपूर्ण जीवन संघर्ष, हर्ष और संघर्ष की कहानी है, जो मानव–जीवन के विविध पहलुओं को व्याख्यायित करती है। यह हमें जीवन जीने की कला सिखाती है कि व्यक्ति को घोर संकट में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए, बल्कि कर्मरत रखकर जीने की एक नई राह की तलाश करनी चाहिए। मानव–मूल्य एवं देश–प्रेम के हित में कार्य करना चाहिए। वास्तव में यह कहानी हम भारतीयों के भारतीत्व पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती है कि हम सब भारतीयों का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह रहा है कि हमें अपने देश, अपनी संस्कृति के बारे जानने के लिए विदेशियों की किताबें पढ़नी पड़ती है। इसका अनुभव आचार्य द्विवेदी जी के यहाँ भी मिलता है। ''शान्तिनिकेतन में द्विवेदी जी प्रो. कोलिन्स से पूछने गये–क्या करूँ–मुझे अवज्ञा से देखते हुए प्रोफेसर ने पूछा–तुम्हारे देश, तुम्हारी भाषा, तुम्हारे रस्म–रिवाज, मेले–ठेले, त्यौहार, व्रत, उपवास, रहन–सहन, वस्त्र किस विषय पर काम हुआ जो मुझसे काम पूछ रहे हो। तुम्हें तो अपने देश के बारे जानने के लिए विदेशियों की किताबे पढ़नी पड़ती है।''7

यदि हम आचार्य हजारी प्रसाद के सैद्वान्तिक जीवन की बात करें तो लोक कल्याण व नैतिक विकास के उत्थान के प्रति इनका जीवन पूर्ण समर्पित था। दूसरी तरफ देखा जाय तो स्त्री–चेतना के प्रति इनकी गहरी संवेदना थी। इन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों पर मौलिक विचार अभिव्यक्त किये हैं। वे लिखते हैं कि 'स्त्री की शक्ति पुरुष को बाँध लेने में है और सार्थकता पुरुष को मुक्त कर देने में।' वे नारी शरीर को देव–मन्दिर कहते थे। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लिखते हैं कि जिन स्त्रियों को कुलटा समझा जाता है, उनमें एक प्रकार का दैवीत्व होता है। हालांकि यह बात सामान्यतः समझ में नहीं आती है। स्त्री की उदारता को ही प्रायः कुलटात्व समझ लिया जाता है। इस मामले में संस्कृत के मनीषी आचार्य भवभूति इनकी बातों की पुष्टि करते हैं–

''यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः'' –भवभूति

वस्तुतः आचार्य जी के मन में नारी के प्रति अपार श्रद्वा थी। पंडित विश्वनाथ त्रिपाठी ने इनके नारी दृष्टि को इस प्रकार रेखांकित किया है कि लड़कियाँ और महिलाएँ उनसे आत्मीय ढंग (घूल–मिलकर) से बातें करती थी। उनकी आखों में वासना की लहर नहीं थी। वे रम्भा, उर्वशी के माथे पर हाथ

रखकर आर्शीवाद दे सकते थे। महिलाएँ उन पर बहुत विश्वास करती थीं। वे उनसे अपनी बहुत बातें, समस्याएँ बतातीं थी। वे उनकी समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनते थे, बाद में परामर्श भी देते थे। सुन्दर महिलाओं से आँखें चुराकर, पवित्रता की रक्षा के लिए, दूसरी तरफ देखते हुए भी देखा पाया गया। वे गुरु, बाबा, पिता, भाई के समान उनसे व्यवहार करते। इसका सुन्दर उदाहरण यह है कि जब वे राजभाषा आयोग के सदस्य के रूप में थे तो कई स्थनों पर भ्रमण करते हुए कश्मीर गये। वहाँ पर स्त्री–सौन्दर्य के प्रति उनके सच्चे भाव को देखा जा सकता है। जैसे–

''लड़किया इतनी सुन्दर, इतनी सुन्दर की क्या कहूँ।.....
इतनी सुन्दर किशोरियाँ–इतनी सुन्दर! साक्षात् पार्वती।''8

उपरोक्त कथन में उनके विचारों और भावों को समझा जा सकता है कि उन्हें सुन्दर लड़कियों में साक्षात् पार्वती का रूप दिखाई पड़ता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सामाजिक रूढ़िवादी परम्पराओं को खारिज करने का दुस्साहस भी करते नजर आतें हैं। वे जात–पात के बन्धनों को तोड़कर छोटे पुत्र गिप्पी (सिद्धार्थ) और अनुराधा के प्रेम विवाह पर राजी हो जाते हैं। यहाँ उनकी प्रगतिशीलता को देखा जा सकता है। वास्तव में उन्होंने पारम्परिक संस्कारों को दबाकर अपने तर्कवादी विचारों को प्रबलता दी। इनके अनुसार विचारों का प्रगतिशील होना एक अलग बात है, किन्तु उसे व्यवहार में उतारना बिल्कुल अलग बात है। अर्थात प्रगतिशील होना और प्रगतिशील बनना दोनों दो अलग–अलग बातें है। गिप्पी के विवाह में अन्तर्जातीय विवाह करके आचार्य जी प्रगतिशील होने का व्यावहारिक परिचय दिया।

आचार्य जी को विभिन्न भाषाओं जैसे–पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, बंग्ला, हिन्दी साहित्य के साथ–ही–साथ पाश्चात्य साहित्य का भी ज्ञान था। वे संस्कृत के विद्वान होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास की परम्परा का पालन करते हुए संस्कृत साहित्य से हिन्दी साहित्य में आकर करके हिन्दी साहित्य सागर में अद्वितीय योगदान दिये। इनके प्रिय कवियों में कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा पाश्चात्य लेखकों में फ्रेजर, मेटिरलिंक, एंगेल्स, एरिक न्यूटन आदि थे। आचार्य जी के उपर बौद्ध मत और वैष्णव मत का प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखायी पड़ता है। प्रमाण स्वरूप इनके सिरहाने पर भगवान श्रीकृष्ण का चित्र लगा रहता था, जो कृष्णभक्ति के प्रति विशेष अनुराग को प्रकट करता है। कवि मंडन का यह सवैया उनकी भक्ति को रेखांकित करता है–

''अलि हौं तो गई जमुना जल को सो कहा कहौं वीर विपत्ति परी।
घहराय कै कारी घटा उनई इतनेई में गागर सीस धरी।।
रपट्यो पग घाट चढ्यो न गयो कवि मंडन ह्वै कै बिहाल गिरी।

चिर जीवहु नन्द को बारो अरी गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी।।''9

निष्कर्षतः आकाशधर्मा गुरु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी आलोचना के शलाका पुरुष व हिन्दी जगत के भीष्म पितामह रहे। इनको शासन सम्बन्धी ज्ञान कम था लेकिन उदार एवं विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। काशी की कूटनीति, षडयंत्रों, अपमानों विरोधों का सामना करते हुए विषम परिस्थितियों में भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ा। अध्यापकीय जीवन के दौरान अपनी कृतियों के माध्यम से मानवीय मुद्दों को बल देते हुए उसको मजबूत नेतृत्व प्रदान किया है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व, कृतित्व व श्रम के द्वारा हिन्दी जगत में अद्वितीय योगदान दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के साहित्यिक निबन्ध 'अशोक के फूल', 'आम फिर बौरा गये', 'नाखून क्यों बढ़ते हैं', 'देवदारु', 'कुटज' एवं उपन्यासों में 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्र लेख', 'पुनर्नवा', 'अनामदास का पोथा' तथा इतिहास ग्रंथों में 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' है। इनकी अन्य साहित्यिक रचनाएँ कबीर, नाथ सम्प्रदाओं एवं साहित्यिक संस्थाओं आदि में अपने कार्य के माध्यम से आजीवन हिन्दी साहित्य की सच्ची सेवा करते रहे। आचार्य द्विवेदी जी ने नाथ–सिद्ध साहित्य, तंत्र–मंत्र, वेद–पुराण, महाभारत, रामायण, संस्कृत साहित्य, ज्योतिष ग्रन्थ, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला साहित्य के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य एवं पश्चिमी काव्यशास्त्र की पुस्तकों को पढ़कर, उसके मर्म को जीवन में उतारा। द्विवेदी जी की रचनाओं में मानवता और प्रकृति का अप्रितम सौन्दर्य समाहित है। साथ ही, निर्गुण भक्ति–चिन्तन में इनका विशिष्ट योगदान है। जीवन के अंतिम समय में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष पद पर नियुक्त होकर आजीवन हिन्दी साहित्य की सेवा करते रहे। ये अच्छे प्रशासक रुप से सदैव आत्मीय सम्बन्धों से आहत रहे, फिर भी जीवन में साहित्य सेवा से कभी पदच्यूत नहीं रहे। आचार्य जी ने विद्वान की विद्वता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करते हुए कहा है कि 'विद्वान बनने के लिए गदहे का धैर्य चाहिए।'

साहित्य के प्रकांड विद्वान होकर भी, अपने गंभीर पांडित्य को अत्यत्न सौम्यता के साथ वहन किया। द्विवेदी जी एक लेखक होने के साथ–साथ एक सफल वक्ता भी रहें। वे किसी भी विषय पर गहराई के साथ अध्ययन करते थे और पुनः विषय वस्तु पर बोलते थे। इनकी सबसे बड़ी शक्ति उनकी लेखनी, वाक्क्षमता, सामाजिक ईमानदारी तथा उनका शील स्वभाव था। इनकी रचनाओं में प्रकृति, इतिहास, कल्पना और मानवता की झलक दिखलायी पड़ती है। इनका दृष्टिकोण प्रगतिशील, उदारवादी, नारीवादी तथा मानवतावादी रहा है। इनका मन सर्जना की अथक कार्यशाला था और इनमें कारयित्री और भावयित्री दोनों ही प्रतिभाएँ विद्यमान थी। आचार्य द्विवेदी हिन्दी जगत नही, भारतीय सांस्कृतिक जगत

की उन विभूतियों में से थे जिन्होंने अपने समय में आने वालें लोगों पर अपने गहन अध्ययन, विद्वता, सहजता, राष्ट्रीयता और स्नेहिल व्यक्तित्व की छाप डाली है। इनकी प्रिय सूक्ति–'चढ़िए हाथी ज्ञान को सहज दुलीचा डार' और प्रिय आदर्श वाक्य–'उद्धरेत आत्मनात्मनम्' रहा। साहित्य जगत में इनके अनुपम योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1– व्योमकेश दरवेश, पंडित विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण 2012, पहली आवृत्ति 2014, भूमिका, पृ. 09
2– वही, पृ. 310
3– वही, पृ. 136
4– वही, पृ. 253
5– वही, पृ. 261
6– वही, पृ. 282
7– वही, पृ. 83
8– वही, पृ. 235
9– वही, पृ. 424